International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 05-08-2019; Accepted: 07-09-2019; Published: 19-10-2019
Volume 1; Issue 2; 2019; Page No. 12-15

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हठयौगिक मुद्राओं की उपयोगिता: एक अध्ययन

जयराम कुशवाहा
योग एवं आयुर्वेद विभाग, साँची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
आधुनिक जीवन की भाग–दौड भरी जिन्दगी में आज भी लोग स्वयं की स्वस्थ और खुशहाल जिन्दगी के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है ऐसे में योग विज्ञान मानव के लिए एक वरदान साबित हुआ है वास्तव योग एक जीवन जीने की कला है। वर्तमान में योग की अनेक परम्परायें हठयोग, राजयोग, मंत्रयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग और तंत्रयोग आदि प्रचलित है, आधुनिक समय में हठयोग सर्वप्रचलित है जिससें साधक स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर निरन्तर बढ़ने का प्रयास करते हुए योग की उच्च अवस्था राजयोग तक पहुँच जाता है। हठयोग की साधना का मुख्य उद्देश्य सूर्य अर्थात् दायीं नासिका और चन्द्र अर्थात् बायीं नासिका के माध्यम से प्राण–अपान का समयोग करना है इस एक्य से प्राण का संचार सुषुम्ना नाड़ी में हो जाता है जिसके फलस्वरूप मनुष्य की सुषुप्त शक्तियों के रूप में स्थित कुण्ड़लिनी शक्ति का जागरण होता है।
हठप्रदीपिका के तीसरे अध्याय में दस मुद्राओं का विशेष महत्व है, इन हठयौगिक मुद्राओं के अभ्यास से साधक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त कर लेता है। हठयौगिक गन्थों में मुद्राओं को आसन–प्राणायाम के बाद वर्णित किया गया है। हठयोग के सभी गन्थों में बन्धों को मुद्राओं के अंर्तगत ही माना गया है इसीलिए योगियों ने मुद्राओं का अभ्यास प्राणायाम के बाद कुम्भक के समय करना उचित है। मुद्राओं के नियमित अभ्यास से प्राण ऊर्जा का प्रवाह निरन्तर बना रहता है जिससे साधक के शरीर में झुर्रियां, सफेद बाल, उदर संबंधि रोग, आधि–व्याधि एवं जरा–मरण आदि महादोश नहीं आते हैं।

मुख्य शब्द: हठयोग, कुण्डलिनी, मूलबन्ध, खेचरी, प्राण ऊर्जा।

प्रस्तावना
भारतीय परम्परा प्राचीन काल से ही अपनी अनोखी सनातन संस्कृति के लिए जानी जाती है भारत की इस पुरातन संस्कृति को आज सम्पूर्ण विश्व एक आर्दश के रूप में प्रतिष्ठित देखकर इसके प्रति आकर्षित होते हैं। भारत की ज्ञान परम्परा एक अलग ही दिशा में प्रवाहित है जहाँ आध्यात्मिकता, योग और विज्ञान को भी अध्ययन का केन्द्र माना जाता है। इस सनातन संस्कृति में अनेकों महान योगी हुए जिन्होंने आत्मानुसंधान के माध्यम से मानव जीवन के उत्थान व आत्मिक उन्नति के लिए योग विद्या जैसी दुर्लभ साधनाओं को आत्मसात कर मानव जाति का कल्याण किया है। योग जीवन का एक ऐसा अनोखा विज्ञान है जिसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ एवं परमानंद की अवस्था को प्राप्त कर सकता है।
योग शब्द संस्कृत की 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ जोड़ना या मिलाना होता है। योग को परिभाषित करते स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी कहते हैं कि ''जीवात्मा की शाश्वत ज्योति को परमात्मा की शाश्वत ज्योति के साथ मिलाना ही योग है''। कहने का तात्पर्य यह है कि आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग कहलाता है। योग के अन्य शास्त्रों में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि चित्त की वृत्तियों का निरोध या शांत हो जाना ही योग कहा गया है।[1] जब योगी का चित्त शांत हो जाता है उस अवस्था में साधक स्वयं के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है[2], और निरन्तर समभाव में रहते हुए सदा–सर्वदा परमानंद में विचरण करता है।

हठप्रदीपिका का सामान्य परिचय
हठप्रदीपिका हठयोग का आधार भूत ग्रन्थ है यह हठयोग की नाथ सम्प्रदायिक गुरू–शिष्य परम्परा पर आधारित ग्रन्थ माना जाता है। हठयोग परम्परा भी प्रचीन समय से ही प्रचलित रही है इस ग्रन्थ को ''स्वामी स्वात्माराम'' जी ने क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित किया है। योगी स्वात्माराम जी सर्वप्रथम योग के आदि प्रर्वतक श्री आदिनाथ भगवान को नमन करते हुए हठयोग की साधनाओं का आरम्भ करते है। योगी स्वात्माराम जी श्रीनाथ गुरू को प्रणाम करके केवल राजयोग की प्राप्ति के लिए इस दिव्य हठयोग साधना का उपदेश देते हैं।
हठप्रदीपिका में वर्णित की गई ये दश मुद्रा स्वयं योग के प्रर्वतक भगवान आदिनाथ द्वारा अतिश्रेष्ठ कही गई हैं और इनके नियमित अभ्यास से साधक को शीघ्र जरा–मरण जैसी महाव्याधियो का भय नहीं रहता है, क्योंकि जब साधक इन दश मुद्राओं का नियमित रूप से अभ्यास करता है तो उसके शरीरस्थ जो 72 हजार नाड़ियाँ बतायी गई हैं उनमें प्राणों संचार निरन्तर चलता रहता है और पुर्नसंतुलित भी होता रहता है जिससे साधक के शरीर की त्वचा में शीघ्र झुर्रियाँ नहीं पड़ती और त्वचा से संबंधित रोग भी नहीं होते है, उसके केश (बाल) अधिक समय तक काल एवं कान्तिवान बने रहते है, साथ ही अनेकों आधि–व्याधियों से मुक्त रहते हुए वह निरन्तर आध्यात्मिक उन्नति करता हुआ दिव्य विभूतियों अर्थात् सिद्धियों को प्राप्त करता है इसीलिए हठयोग में कहा गया है ही बूढ़ा भी जबान हो जाता है और ये महान फलदायक अतिश्रेष्ठ मुद्रायें देवताओं के लिए भी दुर्लभ कही गई हैं।[3]

[1] योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। (पतंजलि योग सूत्र– 1/2)
[2] तदादृष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम् (पतंजलि योग सूत्र– 1/3)
[3] इदं हि मुद्रादशकं जरामरण नाशनम्।
आदिनाथोदितं दिव्यमष्टैश्वर्यप्रदायकम्।
वल्लभमं सर्वसिद्धानां दुर्लभं मरूतामपि।। (हठप्रदीपिका– 3/7)

हठप्रदीपिका का संक्षिप्त विवरण

अध्याय का नाम	संख्या	योग के अंगों का विवरण	श्लोक
प्रथम अध्यायः आसन	15	स्वास्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कुक्कुटासन, उत्तानकुर्मासन, धनुरासन, कूर्मासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, शवासन, ''सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन, भद्रासन''	67
द्वितीय अध्याय प्राणायाम (षट्कर्म)	6 8	शुद्धि क्रियाएँ– धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, एवं कपालभाति। कुम्भक– सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और प्लावनी कुम्भक।	78
तृतीय अध्याय मुद्राएँ	10	महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली मुद्रा और शक्तिचालन मुद्रा।	126
चतुर्थ अध्याय नादानुसंधान	4	नादानुसंधान की अवस्थाएं– आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निषपत्ति अवस्था।	114

अध्ययन की आवश्यकता

यौगिक अभ्यासों में आसन, प्राणायाम, मुद्रा–बन्ध, नादानुसंधान और चक्र व कुण्डलिनी सबका अलग–अगल महत्व है ये सभी हठयोग के ही अंग हैं जिसमें मुद्राओं का भी विशेष स्थान माना गया है कुछ विद्वान योगियों का मानना है कि मुद्राओं का अभ्यास आसन व प्राणायाम के पश्चात् ही करना चाहिए और हठयोग के ग्रन्थों में मुद्राओं को आसन व प्राणायाम बाद ही वर्णित किया गया है। योगियों ने स्यवं के अनुभव के आधार पर पाया कि आसनों के माध्यम से जब साधक शारीरिक शुद्धि कर रोग आदि से मुक्त हो जाता है और साथ ही शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता को प्राप्त कर लेता है, उसके पश्चात् ही साधक को नाड़ी–शोधन प्राणायाम आदि का अभ्यास करना चाहिए। जब साधक प्राणायम के माध्यम से शरीरस्थ सभी नाड़ियों का मल शोधन कर लेता है तो वह विभिन्न प्रकार के आधि–व्याधियों से मुक्त रहता है। इस प्रकार नियमित कुम्भक के साथ प्राणायाम आदि का अभ्यास करने वाले साधक के शरीर में प्राणिक ऊर्जा का संचय होता है उस बढ़ी हुई प्राण ऊर्जा को नियंत्रित व सही दिशा में उपयोग करने के लिए महान योगीजन मुद्रा–बन्ध का प्रयोग करते थे।

मुद्राओं के अभ्यास से साधक सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर निरन्तर अग्रसर रहता है और साधक स्वयं के अन्दर समाहित असीम शक्तियों का आत्मसाक्षात्कार करता है। हठयोग में मानव शरीर के अन्दर सूक्ष्म रूप में प्रसुप्त शक्ति या उर्जा केन्द्रों के रूप में चक्रों की अवधारणा को स्पष्ट रूप से वर्णित किया गया है। इन प्रसुप्त शक्तियों की आत्मानुभूति करने के लिए हठयोग में मुद्रा–बन्ध के अभ्यासों का विशेष रूप से वर्णन किया गया है, हठप्रदीपिका में कहा भी गया है, कि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से साधक अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त करते हुए आध्यात्मिक योग की उच्चतम अवस्था राजयोग तक पहुँच सकता है। हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति इड़ा और पिंगला नाड़ियों के बीच स्थित सुषुम्ना नाड़ी के मूल स्थान में अर्थात् लिंग और गुदेन्द्रिय की बीच शीवनी स्थान है, वहीं पर सूक्ष्म रूप में मूलाधार पद्म स्थित है जिसके बीचों–बीच एक त्रिकोणाकार आकृति में साढ़े तीन लपेटे कुण्डलिनी शक्ति अवस्थित मानी गई है जिसे शक्ति का प्रतीक भी माना जाता है। उस कुण्डलिनी शक्ति कि जागरण के लिये साधक को सम्पूर्ण सजगता व प्रयास के साथ नियमित रूप से मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए।[4]

हठयौगिक मुद्रायें

हठयोग के सभी यौगिक अभ्यासों में मुद्राओं का भी विशेष स्थान है। हठयोग के प्रमुख ग्रन्थों में मुद्राओं की विधि, लाभ एवं उपयोगिता सहित स्पष्ट वर्णन किया गया है। हठप्रदीपिका भी हठयोग का प्रमुख ग्रन्थ माना गया है इसके तीसरे अध्याय के अंर्तगत दश प्रमुख मुद्राएँ महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान बन्ध, मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली और शक्तिचालन मुद्रा विस्तृत रूप से वर्णित की गई हैं। विद्वानों के मतानुसार इन दश मुद्राओं में से चार बन्ध महाबन्ध, मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध और जालन्धर बन्ध, तथा छः मुद्राएँ महामुद्रा, महावेध मुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा और शक्तिचालन मुद्रा कही गई हैं।[5]

हठप्रदीपिका में वर्णित मुद्रायें

1. महामुद्रा
2. महाबन्ध मुद्रा
3. महावेध मुद्रा
4. खेचरी मुद्रा
5. उड्डियानबन्ध मुद्रा
6. जालन्धरबन्ध मुद्रा
7. विपरीतकरणी मुद्रा
8. मूलबन्ध मुद्रा
9. वज्रोली मुद्रा
10. शक्तिचालन मुद्रा

1. महामुद्रा

विधिः बायें पैर की एड़ी को मूलस्थान (शीवनी) पर दृढ़ता से स्थापित करें उसके पश्चात् दाहिने पैर की एड़ी को सामने की तरफ फैलाते हुए उसके अंगूठे को दोनों हाथों से दृढ़ता पूर्वक पकडें और फिर क्रम से मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध और जालन्धर बन्ध लगाकर कुछ देर तक इस स्थिति में रहें शरीर के प्रति पूर्ण सजगता बनी रहे। एक तरफ से करने के तत्पश्चात् उसी मुद्रा को दूसरी ओर से करें इस प्रकार से अभ्यास की गई मुद्रा ही महामुद्रा कही जाती है।[6]

लाभः इस मुद्रा का नियमित रूप से अभ्यास करने वाले साधक को कुछ भी अपथ्य नहीं रहता वह महान योगी भयानक विषों को भी सहज अमृत के समान ही पचा जाता है। उसको किसी भी प्रकार की व्याधि जैसे क्षय (तपेदिक) कुष्टरोग, चर्मरोग, कोष्ठबद्धता (कब्ज), वायुगोला, अजीर्ण और अन्य संभावित रोग नष्ट हो जाते हैं।[7]

2. महाबन्ध

विधिः बायें पैर की एड़ी को सीवनी (मूलाधार) स्थान पर लगाते हुए दाहिने पैर को बायें पैर की जंघा (थाई) पर रखें कुछ विद्वानों का मानना है कि इस महाबन्ध मुद्रा को अभ्यास पद्मासन या सिद्धासन में भी कर सकते है परन्तु हठप्रदीपिका में जो आसन की स्थिति बतायी गई है वह अर्द्ध पद्मासन की है। इस आसन की स्थिति में साधक को पूरक करके एक साथ क्रम से त्रिबन्ध लगाना चाहिए एवं सम्पूर्ण सजगता को

---

[4] तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
बह्मद्वारमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्।। (हठप्रदीपिका– 3/5)

[5] महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डियानं मूलबन्धस्ततो जालन्धराभिधः।
करणी विपरीताख्या वज्रोली शक्तिचालनम्।। (हठप्रदीपिका– 3/6)

[6] पदमूलेन वामेन योनिं सम्पीड्य।
प्रसारितं पदं कृत्वां कराभ्यां धारयेद्दृढ़म्।
कण्ठे बन्धं समारोप्य थारयेद्वायुमूर्ध्वतः।। (हठप्रदीपिका–3/9)

[7] हठप्रदीपिका– 3/16–17

अंर्तमुखी रखते हुए मन को सुषुम्ना में लगाना चाहिए यही महाबन्ध कहा गया है।[8]

लाभः इस बन्ध के अभ्यास से शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियों का मल दूर हो जाता है और प्राणों का संचार सुषुम्ना सहित सभी नाड़ियों में संचारित होता रहता है जिसके फलस्वरूप साधक निरन्तर स्वस्थ्य रहते हुए साधना में रत रहता है।

महावेध मुद्रा

विधिः महावेध मुद्रा का अभ्यास कुण्डलिनी के अभ्यासों में आता है इसमें कहा गया है कि साधक को सर्वप्रथम अपनों दोनों हाथों की हथेलियों को अच्छी तरह से जमीन पर रख लें उसके बाद दोनों हाथों से अपने नितम्बों को उठा कर पुनः पुनः जमीन पर पटकना चाहिए इस प्रकार अभ्यास करने वाली मुद्रा को ही महावेध मुद्रा कहा गया है। इस मुद्रा का नियमित अभ्यास करने से प्राण वायु दोनों नाड़ियों इड़ा–पिंगला के माध्यम से सुषुम्ना में प्रवेश कर संचारित हो जाती है।[9]

लाभः हठप्रदीपिका में महामुद्रा के लाभ बताते हुए कहा गया है कि इस मुद्रा के अभ्यास से साधक को महान सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और नियमित अभ्यास करने से यह मुद्रा झुर्रियाँ, बालों का पकना यानि सफेद बाल होना और कंपन अर्थात् शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता को दूर करती है।[10]

खेचरी मुद्रा

विधिः खेचरी मुद्रा के अभ्यासी को सर्वप्रथम किसी एक ध्यानात्मक आसन में बैठना चाहिए उसके बाद जीभ को उल्टा करके या तालु की तरफ मोड़कर कपालकुहर में प्रवेश कराना चाहिए। और साथ ही दृष्टि को भ्रुमध्य में रखाना चाहिए। इस प्रकार विधि पूर्वक अभ्यास को ही खेचरी मुद्रा कहा गया है।[11]

लाभः और साधक जरा–मरण आदि दोषों से मुक्त हो जाता है। इस मुद्रा का नियमित अभ्यास करने वाले साधक को मधुर, अम्ल आदि सभी रसों की सिद्धि हो जाती है।

उड्डियान बन्ध

विधिः उड्डियान बन्ध की विधि के बारे में कहा गया है कि साधक को सर्वप्रथम पद्मासन की स्थिति में बैठकर दोनों हाथों को दृढ़ता से घुटनों पर रखना चाहिए उसके बाद उदर को सुषुम्ना नाड़ी अर्थात् पीछे की ओर खींचना चाहिए इस प्रकार अभ्यास को ही उड्डियान बन्ध कहा गया है।[12]

लाभः– उड्डियान बन्ध के निरन्तर अभ्यास करने वाले साधक को उदर से संबंधित रोग जैसे अजीर्ण, कब्ज आदि नहीं होते है और अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

मूलबन्ध

विधिः– हठप्रदीपिका में मूलबन्ध की विधि के बारे में कहा गया है कि सर्वप्रथम साधक को एड़ी से मूलस्थान यानि सीवनी को दबाकर गुदा द्वार एवं जननेन्द्रिय का आकुंचन करना चाहिए। और यह भावना करना है कि अपान वायु उर्ध्वगामी हो रही है यही मूलबन्ध कहा गया है।[13]

लाभः– मूलबन्ध का अभ्यास करने वाले साधक का शीध्र ही योग सिद्ध हो जाता है इस मुद्रा का निरन्तर अभ्यास करने से प्राण और अपान वायु का समयोग होता है जिससे साधक के मल–मूध आदि की अल्पता हो जाती है और वृद्ध भी युवा के समान कान्तिवान हो जाता है।

जालन्धर बन्ध

विधिः जालन्धर बन्ध की विधि के बारे में कहा गया है कि अभ्यासी सर्वप्रथम अपने कण्ठ प्रदेश पर पूर्ण सजग लाते हुए कण्ठ का संकुचन करते हुए हृदय में चिबुक को दृढ़तापूर्वक स्थापित करने को ही जालन्धर बन्ध कहा गया है।[14]

लाभः यह जालन्धर नामक बन्ध कण्ठ (गले) से संबंधित रोगों जैसे थायराईड़, ग्वाइटर (घेंघा) व अन्य कण्ट सबंधित रोगों को ठीक करता है एवं गले की सभी नाड़ियों का मलशोधन भी करता है। हठप्रदीपिका में इस बन्ध की श्रेष्ठता बताते हुए कहा गया है कि इस बन्ध के नियमित अभ्यास से कपालकुहर से निकलने वाले अमृत रूपी सोमस्त्राव का जठराग्नि में जाकर क्षरण होने से रूक जाता है।

विपरीतकरणी मुद्रा

विधिः सर्वप्रथम सम्पूर्ण शरीर को शिथिल रखते हुए शवासन की स्थिति में लेट जाएं उसके बाद दोनों पैरों को एक साथ ऊपर उठाएं और कमर पर दोनों हथेलियों से सहारा देते हुए इतना ऊपर उठाएं कि जमीन पर केवल आपके कंधे, गर्दन और सिर वाला भाग हो। हठप्रदीपिका में भी कहा गया है कि इस मुद्रा में नाभि को ऊपर और तालु को नीचे करने से सूर्यमण्डल यानि उदर वाला भाग ऊपर हो जाता है और सोममण्डल यानि कपालकुहर से निकलने वाला सोमस्त्राव नीचे हो जाता है इसे ही विपरीतकरणी मुद्रा कहा गया है।[15]

लाभः इस मुद्रा का अभ्यास करने से उर्ध्व नाड़ियों का मल क्षीण हो जाता है और यदि साधक इस अतिश्रेष्ठ मुद्रा का नियमित अभ्यास करता है तो छः माह में ही वह अनेक सिद्धियों को प्राप्त करने वाला हो जाता है हठप्रदीपिका में भी कहा गया है कि इस मुद्रा का प्रतिदिन तीन घंटे तक नियमित अभ्यास करने से योगी के शरीर में झुर्रियां तथा सफेद बाल नहीं होते हैं और ऐसा महान सिद्ध योगी मृत्यु को जीत लेता है।[16]

वज्रोली मुद्रा

विधिः वज्रोली मुद्रा हठयोग के गोपनीय अभ्यासों में से एक है जो हर किसी के लिए संभव नहीं है और कहा भी गया है कि इस मुद्रा का अभ्यास किसी योग्य योगगुरू के निर्देशन में करना चाहिए। इसके अभ्यास विधि के बारे में कहा गया है कि साधक को दृढ़ता पूर्वक अपने बिन्दु की रक्षा करनी चाहिए और यदि बिन्दु (वीर्य) योनि मण्डल में चला भी जाए तो योगी साधक अपने लिंग के माध्यम से उसे पुनः खींचकर धारण कर लेता है। यही अति दुर्लभ वज्रोली मुद्रा कही गई

---

[8] पार्ष्णिा वामस्य पादस्य योनिस्थाने नियोजयेत्।
वामोरूपरि संस्थाप्य दक्षिणं चरणं तथा।।
पूरयित्वा ततो वायुं हृदये चिबुकं दृढम्।
निष्पीड्य योनिमाकुंच्य मनोमध्ये नियोजयेत्।। (हठप्रदीपिका–3/18,19)

[9] समहस्तयुगो भूमौ स्फिचौ संताडयेच्छनैः।
पुटद्वयमतिक्रम्य वायुः स्फुरति मध्यगः।। (हठप्रदीपिका–3/26)

[10] हठप्रदीपिका–3/28

[11] कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा।
भुवोरन्तर्गता दृष्टिमुद्रा भवति खेचरी।। (हठप्रदीपिका–3/31)

[12] हठप्रदीपिका–3/54–56

[13] पार्ष्णिभागेन सम्पीड्य योनिमाकुंचयेद्गुदम्।
अपान मूर्ध्वमाकृष्य मूलबन्धोऽभिधीयते।। (हठप्रदीपिका–3/60)

[14] कण्ठमाकुंच्य हृदये स्थापयेच्चिबुकं दृढ़म्।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं जरामृत्युविनाशकः।। (हठप्रदीपिका–3/69)

[15] उर्ध्वनाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशीः।
करणी विपरीताख्या गुरूवाक्येन लभ्यते।। (हठप्रदीपिका– 3/78)

[16] हठप्रदीपिका–3/81

है। वज्रोली मुद्रा के दो भेद कहे गए हैं– सहजोली और अमरोली मुद्रा।[17]

लाभः वज्रोली मुद्रा के अभ्यास से साधक ग्रहस्थ काल में भी ब्रह्मचर्य का पालन करता है और वीर्य की रक्षा करता है जिससे साधक की निरन्तर कान्तिवान और ओजवान दिखाई देता है उसके शरीर से दिव्य गन्ध आती है। ऐसे योगी दुर्लभ ही होते हैं।

शक्तिचालन मुद्रा

विधिः हठप्रदीपिका में वर्णित शक्तिचालन मुद्रा का अभ्यास विशेष रूप से कुण्डलिनी जागरण के लिए बताया गया है। इसमें कहा गया है कि मूलस्थान से एक बित्ता लगभग 9 इंच ऊपर की ओर चार अंगुल चौड़ाई वाला सफेद कोमल वस्त्र को लपेटना है उसके बाद वज्रासन में बैठकर दोनों हाथों से दोनों पैरों के टखनों को दृढ़ता से पकड़कर कन्द भाग को जोर से दबाएं इससे कुण्डलिनी शक्ति पर प्रभाव पड़ता है। और उसके बाद योगी साधक वज्रासन में बैठकर कुण्डलिनी शक्ति का चालन क्रिया करे फिर भस्त्रिका कुम्भक प्राणायाम करे जिससे कुण्डलिनी शक्ति शीघ्र जागती है।[18]

लाभः शक्तिचालन मुद्रा के अभ्यास से साधक की सुषुप्त शक्तियों का जागरण होता है हठयोग में कहा गया है कि इस मुद्रा के अभ्यास से प्राण और अपान का एक्य होने से प्राण का संचार सुषुम्ना में होता है जिसके साधक की सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार विधि पूर्वक शक्तिचालन मुद्रा का अभ्यास करने के पश्चात् साधक को मृत्यु आदि का भय नहीं रहता है वह साधक सभी भव–बन्धनों को पार कर मोक्ष द्वार का भेदन करता है।

विमर्श

हठयौगिक मुद्राओं को मनोशारीरिक स्थितियाँ, गति–विधि या मनोभाव कहा गया है। योग मुद्राओं का उद्देश्य ऊर्जा–क्षेत्र या प्राणिक संरचना को पुनर्संतुलित करना है। हठयोग परम्परा में कहा भी गया है कि मुद्राओं के अभ्यास से साधक विभिन्न प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है। मुद्राओं के अभ्यास से साधक का स्थूल शरीर यानि अन्नमयकोश तो प्रभावित होता ही है साथ ही सूक्ष्म शरीर अर्थात् प्राणमयकोश और मनोमयकोश भी प्रभावित होता है, क्योंकि मुद्रा शब्द का अर्थ ही 'प्रसन्नता' या 'उल्लास' होता है और प्रसन्नता, उल्लास, हर्ष, संतोष, आनंद एवं परमानंद ये सब मन के भाव है जो सीधे मनोममयकोश से संबंधित हैं। हठयोग में मुद्राओं के अभ्यास पक्ष पर जो देते हुए कहा भी गया है कि ये सभी दुलर्भ मुद्रायें परमगोपनीय और सुयोग्य योगगुरू के निर्देशन में करनी चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि मुद्राओं का अभ्यास हठयोग में कितना आवश्यक माना गया है। तंत्र साहित्य में भी मुद्राओं का विशेष महत्व बताते हुए कहा गया है कि मुद्रा मूलतः अपने चिदानन्दात्मक आत्मस्वरूप के उन्मीलन का एक साधन तो है ही साथ ही प्रत्युत अपने अन्तरतम में यह शिव–शक्ति स्वरूप है।[19]

मुद्राओं का अभ्यास प्राचीन समय से ही हठयौगिक अभ्यासों का महत्वपूर्ण अंग रहा है क्योंकि जब साधक मुद्राओं का अभ्यास करता है तो किसी भी मुद्रा की विशेष स्थिति में वह सामान्य संवेदनाओं में एकाएक परिवर्तन देखता है सामान्य तौर पर किसी एक मुद्रा के माध्यम से मुद्रा की उपयोगिता को समझा जा सकता है जब साधक महामुद्रा का अभ्यास करता है तो वह देखत है कि उसकी सामान्य ह्रदय गति एकाएक तीव्र हो जाती है साथ ही मानों रक्त का प्रवाह बहुत तेजी से सम्पूर्ण शरीर में प्रवाहित होने लगा हो एवं सीवनी (मूलस्थान) में मंद–मंद झनझनाहट उत्पन्न होने लगती है। यह मुद्रा के प्रारम्भिक लक्षण कहलाते हैं। ठीक इसी प्रकार मुद्राओं का अभ्यास साधक के आन्तरिक अंगों पर सीधे प्रभाव ड़ालती हैं। साधक को यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए की हठयौगिक ग्रन्थों में मुद्राभ्यास के जिन लाभों की चर्चा की गई है वे सब एक अभ्यस्त योगी के द्वारा प्राप्त सिद्धियाँ हैं तात्पर्य यह है कि योगियों ने मुद्राओं का निरन्तर कई वर्षों तक अभ्यास किया उसके बाद जो अनुभूति उन्हें हुई उसको उन्होंने ग्रन्थों के माध्यम से जनकल्याण के लिये प्रसारित की। अतः स्पष्ट है कि प्रारम्भ में मुद्राओं के अभ्यास से जो भी अनुभूति हो उसे सत्य मानकर आगे बढ़ते हुए निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन से ज्ञात होता है कि आधुनिक समय में योगाभ्यास के साथ मुद्राओं का भी अभ्यास उतना ही आवश्यक है जितनी की अन्य यौगिक अभ्यास है साधक मुद्राओं के अभ्यास से सूक्ष्म शारीरिक गतियों का संयोजन एवं समायोजन करता है एक मान्यता यह भी है कि मुद्राओं के अभ्यास के परिणामस्वरूप प्राण का बिखराव रूकता है तो मन अंतर्मुखी होता है। तांत्रिक साहित्य में इस बात का उल्लेख मिलता है कि मुद्राओं के अभ्यास द्वारा चेतना को अर्न्तमुखी बना कर प्रत्याहार और धारणा की अवस्थाओं को प्राप्त किया जा सकता है। मुद्राओं का अभ्यास शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के साथ आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायक है इसीलिए इनका अभ्यास वर्तमान में अधिक उपयोगी है।

संदर्भ सूची

1. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद (1994), योग दर्शन–योग औपनिषदीय दृष्टिकोण, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगादर्शन मुंगेर, बिहार, भारत।
2. सरस्वती, स्वामी निरंजनानंद (1997), घेरण्ड संहिता (महर्षि घेरण्ड की योग शिक्षा पर भाष्य), योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगादर्शन मुंगेर, बिहार, भारत।
3. ब्रह्मानंदकृत (2002), हठप्रदीपिकाज्योत्स्ना, आलोचनात्मक संस्करण हिन्दी, संम्पादकः कैवल्यधाम योग–संस्थान लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र।
4. योगी स्वात्मारामकृत, हठप्रदीपिका (1980) संपादकः दिगम्बर स्वामी, झा पीताम्बर, कैवल्यधाम योग–संस्थान लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र।
5. योगी श्रीनिवासकृत, हठरत्नावली (2002) सम्पादकः घोरोट, एम. एम. कैवल्यधाम योग–संस्थान लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र।
6. महेशानंद, स्वामी एवं सम्पादक मण्डल, (1999), शिवसंहिता, एक आलोचनात्मक संस्करण हिन्दी, संपादक कैवल्यधाम योग–संस्थान लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र।
7. बसवरड्डि, ईश्वर वी एवं पाठक, सत्यप्रकाश (2011), हठयोग के आधार एवं प्रयोग, प्रकाशनः मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।
8. महेशानंद, स्वामी एवं सम्पादक मण्डल, (2011) YOGA CONCORDANCE (VOL. 5^{th}or 6^{th}) योगोपनिषदों पर आधारित, कैवल्यधाम योग–संस्थान लोनावाला पुणे, महाराष्ट्र।
9. योग दर्शन, टीका, गीता प्रेस, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश।

[17] हठप्रदीपिका–3/82

[18] हठप्रदीपिका–110–112

[19] अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुद्राख्याः शिवशक्तियः। (मालिनीविजायोत्तरतन्त्र, अधिकार–7)